International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 10-12

अर्थापत्ति का स्वरूप और प्रमाणत्व

डॉ0 अनन्त कुमार यादव

अध्यक्ष, दर्शन विभाग, इन्स्टीट्यूट ऑफ ऑरियण्टल फिलोसोफी, वृन्दावन, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान मीमांसा में ज्ञान के लिये प्रमाण का व्यापक विमर्श हुआ है। अलग–अलग दार्शनिक सम्प्रदाय अपनी तत्वमीमांसा के अनुरूप ज्ञान के विभिन्न प्रमाणों को स्वीकार करते है। जैसे– चार्वाक केवल एक मात्र प्रमाण प्रत्यक्ष को स्वीकार करता है जबकि बौद्ध प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण मानते है। इसी प्रकार जैन दर्शन में प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द तीन प्रमाण स्वीकार किया जाता है। आस्तिक दर्शन में वैशेषिक केवल दो प्रमाण प्रत्यक्ष और अनुमान को मानता है। जबकि सांख्य योग प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द इन तीन प्रमाणों को स्वीकार करते है वही न्याय दर्शन, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणों को मानते है। उल्लेखनीय है कि मीमांसा दर्शन को दो धाराओं में विभाजित किया जाता है– पहला प्रभाकर मीमांसक और दूसरा कुमारिल भाट्ट मीमांसक। स्पष्ट है कि जहाँ प्रभाकर मीमांसक पाँच प्रमाण को स्वीकार करते है जो प्रत्यक्ष अनुमान, शब्द, उपमान व अर्थापत्ति है। वहीं भाट्ट मीमांसक छः प्रमाण–प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति व अनुपलब्धि को मानते है। इसी प्रकार वेदान्त दर्शन भी छः प्रमाणों प्रत्यक्ष अनुमान शब्द उपमान, अर्थापत्ति व अनुपलब्धि को स्वीकार करता है।

ध्यातव्य है कि अर्थापत्ति को ज्ञान के लिए प्रमाण मीमांसक और वेदान्ती मानते है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्य दार्शनिक सम्प्रदाय अर्थापत्ति को कहीं न कहीं अन्य प्रमाणों में समाविष्ट मान लेते है। किन्तु मीमांसको एवं वेदान्तीयों ने अर्थापत्ति को ज्ञान का एक प्रमाण माना है और विधिवत् इसके स्वरूप का निरूपण करते है। शब्दार्थ की दृष्टि से अर्थापत्ति को अर्थ + आपत्ति के रूप में व्याख्यायित किया जाता है जहाँ अर्थ से तात्पर्य विषय और आपत्ति से तात्पर्य कल्पना है। अर्थात् अर्थापत्ति विषय की कल्पना है। इस प्रकार मीमांसक और वेदान्ती दोनों ही अर्थापत्ति को कल्पना के आधार पर विषय की व्याख्या करने वाले प्रमाण के रूप में की है। फिर भी अर्थापत्ति के स्वरूप के सन्दर्भ में दोनों मीमांसक और वेदान्तीयों के विचारों में कुछ मतभेद दिखाई पड़ते है।

प्रश्न उठता है कि मीमांसा दर्शन में अर्थापत्ति का स्वरूप क्या है ? जैमिनी प्रणीत शाबर भाष्य में अर्थापत्ति उस अर्थ या विषय की कल्पना है जिसके बिना श्रुत अथवा दृष्ट विषय की उपपत्ति न हो। जैसे यदि यह सुना जाता है कि देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता है तथापि वह प्रचुर स्वस्थ है तो दिन के भोजन त्याग और प्रचुर स्वास्थय में स्पष्ट विरोधाभाष दिखता है। इन दो विरोधी तथ्यों की सहधर्मिता की व्याख्या तभी सम्भव है जबकि यह कल्पना कर ली जाये कि– देवदत्त रात्रि में भोजन करता है। यह स्वीकृति या कल्पना ही अर्थापत्ति है। इसके परिणाम स्वरूप ही देवदत्त के दिन में भोजन न करने फिर प्रचुर स्वस्थ होने की व्याख्या हो पाती है। अतः यह कल्पना करना ही अर्थापत्ति है कि "देवदत्त रात्रि में भोजन ग्रहण करता है"।[1] उल्लेखनीय है कि मीमांसा के दोनो आचार्य कुमारील भाट्ट और प्रभाकर मिश्र दोनों ने ही अर्थापत्ति को ज्ञान के स्वतंत्र साधन के रूप में स्वीकार किया है। ये दोनों ही अर्थापत्ति सम्बन्धी अपनी अवधारणा का विकास शाबरभाष्य के आधार पर ही करते है फिर भी दोनों की अर्थापत्ति सम्बन्धी विवेचना में प्रर्याप्त भेद है।

कुमारील भाट्ट ने अर्थापत्ति सम्बन्धी अपनी विवेचना में शाबरभाष्योक्त– "दृष्ट श्रुतोवाऽर्थोन्यथानोपपद्यते" की व्याख्या करते हुए कहा है कि अर्थापत्ति वह ज्ञान है जिसमें एक कल्पना के द्वारा किसी दृष्ट या किसी श्रुत विषय की व्याख्या सम्भव हो पाती है और जिसकी व्याख्या इस कल्पना के अभाव में अन्य किसी दृष्ट या श्रुत प्रमाण के द्वारा सम्भव न हो तो इस कल्पना को अर्थापत्ति कहते है।[2] जैसे देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता तथापि वह मोटा दिखता है– इस दृष्ट अथवा श्रुत विषय की व्याख्या इस कल्पना (आपत्ति) के अतिरिक्त शेष अन्य प्रमाणों के द्वारा सम्भव नहीं कि– "देवदत्त रात्रि में भोजन करता है"। अतः देवदत्त रात्रि में भोजन करता है– यह कल्पना ही अर्थापत्ति है और इस प्रकार यह कल्पना प्रमा अथवा प्रमाण है।

किन्तु प्रभाकर शाबर प्रदत्त अर्थापत्ति की व्याख्या के शब्दानुक्रम को बदलते हुए अर्थापत्ति की जो व्याख्या प्रस्तुत करते है वह व्याख्या कुमारिल भाट्ट प्रदत्त अर्थापत्ति की व्याख्या से तनिक भिन्न है। प्रभाकर शाबरकृत "अर्थापत्तिरपि दृष्टः श्रुतो वाऽर्थोन्यथानोपपद्यते इत्यर्थकल्पना" के स्थान पर " अर्थापत्तिरपि दृष्टःश्रुतो वार्थोत्यर्थकल्पना अन्यथानोपपद्यते इति" को रखते हुए अर्थापत्ति की जो व्याख्या प्रस्तुत करते है, उसके अनुसार " अर्थापत्ति वह दृष्ट अथवा श्रुत कल्पना है जिसके द्वारा किसी एक ऐसे विषय की व्याख्या की जाती है जिस विषय की व्याख्या इस कल्पना के अभाव में सम्भव न हो। जैसे देवदत्त के दिन में भोजन नहीं करने तथा फिर पुष्ट दिखने की व्याख्या इस कल्पना के बिना सम्भवं नही कि वह रात्रि में भोजन करता है। "देवदत्त रात्रि में भोजन करता है" इस विषय का ज्ञान न तो दृष्ट है, न श्रुत बल्कि यह काल्पनिक है।

ध्यातव्य है कि अर्थापत्ति के लिए दी गई भाट्ट मीमांसको और प्रभाकरों की व्याख्या में मूल भेद यह है कि जहाँ भाट्ट मीमांसक अर्थापत्ति को किसी दृष्ट अथवा श्रुत विषय की व्याख्या के लिए की गई कल्पना कहते है वही प्रभाकर अर्थापत्ति को किसी ऐसे विषय की व्याख्या के लिए की गयी एक ऐसी व्याख्या के रूप में परिभाषित करने के इच्छुक प्रतीत होते है जो व्याख्या दृष्ट अथवा श्रुत न होकर कल्पना प्रसूत हो तथा जिस कल्पना प्रसूत व्याख्या के अभाव में प्रदत्त विषय की अन्य व्याख्या संभव न हो। जैसे– देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता फिर भी मोटा है– इस विषय की व्याख्या के लिए जब यह कल्पना की जाती है कि देवदत्त रात्रि में भोजन करता है तो यह व्याख्या न तो प्रत्यक्ष से प्राप्त होती है, न शब्द से बल्कि यह विशुद्ध रूप से कल्पना प्रसूत है।[3]

अब प्रश्न उठता है कि वेदान्त मत में अर्थापत्ति का स्वरूप क्या है ? धर्मराजध्वरीन्द्र अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वेदान्त परिभाषा में अर्थापत्ति की वैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है। वेदान्त परिभाषा के अनुसार उपपाद्य (कार्य) के ज्ञान से उपपादक (कारण) की कल्पना ही अर्थापत्ति है।[4] ' देवदत्त का दिन में भोजन न करना फिर भी स्वस्थ रहना ' कार्य है तथा इसके ज्ञान से इसके कारण ' देवदत्त के रात्रि

में भोजन करने की कल्पना' ही अर्थापत्ति है। इस प्रकार वेदान्त परिभाषा अनुसार अर्थापत्ति के दो अंग है– उपपाद्य (कार्य) तथा उपपादक (कारण)। जिस विषय की व्याख्या करनी होती है उसे उपपाद्य कहते है तथा जो व्याख्या प्रस्तुत की जाती है उसे उपपादक की संज्ञा दी जाती है। वेदान्त परिभाषा के अनुसार अर्थापत्ति मे उपपाद्य के ज्ञान से उपपादक का ज्ञान अर्थापत्ति है। जैसे देवदत्त के दिन में भोजन न करने फिर भी मोटा दिखने के ज्ञान से देवदत्त के रात्रि में भोजन करने का ज्ञान अर्थापत्ति से प्राप्त किया जाता है।

उल्लेखनीय है कि अर्थापत्ति की मीमांसा प्रदत्त व्याख्या तथा वेदानत प्रदत्त व्याख्या में एक मौलिक भेद दिखता है। वह भेद यह है कि मीमांसक प्रदत्त विषय की व्याख्या के लिए अर्थापत्ति प्रमाण की उपादेयता को स्वीकार करते है जबकि दूसरी ओर वेदान्ती प्रदत्त विषय के ज्ञान के आधार पर काल्पनिक विषय के ज्ञान को अर्थापत्ति के आधार पर संपुष्टि प्रदान करते है। वेदान्ती "देवदत्त के दिन में भोजन न करने पर भी स्वस्थ दिखता है " इस उपपाद्यय के आधार पर इस उपपादक कि 'देवदत्त रात्रि में भोजन करता है' की कल्पना को संपुष्टि प्रदान करते है।[5]

किन्तु वेदान्त मत के विरोधी अपने पक्ष को प्रस्तुत करते हुए कहते है कि यदि उपपाद्यय के ज्ञान से उपपादक का ज्ञान अर्थापत्ति है (उपपाद्यज्ञानेन उपपादक ज्ञानम् अर्थापत्तिः) तो इससे अर्थापत्ति और अनुमान का भेद नष्ट होता है क्योंकि अर्थापत्ति की इस परिभाषा से कार्य के ज्ञान के आधार पर कारण के ज्ञान की बात कहीं गई है जो कारणता सम्बन्ध के ज्ञान पर आधारित है। यह सम्बन्ध हेतु और साध्य के बीच कारणता का सम्बन्ध बतलाता है। वस्तुतः हेतु और साध्य के बीच इसी सम्बन्ध ज्ञान के आधार पर व्याप्ति की स्थापना होती है जो अनुमान का आधार है। इसी तर्क के आधार पर आलोचक वेदान्त के अर्थापत्ति प्रमाण का अन्तर्भाव अनुमान प्रमाण में करने की बात करते है। ज्ञातव्य है कि केशव मिश्र अपनी पुस्तक तर्क भाषा में अर्थापत्ति का अन्तर्भाव केवल व्यतिरेकी अनुमान में किया है।[6] किन्तु नैय्यायिको के इस तर्क के विरूद्ध वेदान्त समर्थकों के अपने तर्क है। इनका कहना है कि व्यतिरेकी व्याप्ति को वस्तुतः व्याप्ति के कोटि में रखा ही नही जा सकता। इसलिए अर्थापत्ति के अनुमान में अन्तर्भाव सम्भव नहीं है।

अर्थापत्ति के प्रकार

कुमारिल के अनुसार भाष्य में प्रयुक्त श्रुत और दृष्ट शब्द अर्थापत्ति के दो भेदों के वाचक है किन्तु प्रभाकर यह कथन है कि श्रुत और दृष्ट एक ही प्रमाण के दो नामान्तर है।[7] जबकि वेदान्त परिभाषा के प्रणेता वेदान्ती धर्मराजाध्वरीन्द्र ने भी कुमारिल की तरह अर्थापत्ति के दो रूप मानते हैः–

(1) दृष्टार्थापत्ति

(2) श्रुतार्थापत्ति

जहाँ अर्थापत्ति के द्वारा दृष्ट अथवा किसी देखी गई घटना की व्याख्या हो रही हो उसे दृष्टार्थापत्ति कहते है जैसे देवदत्त के मोटापे का प्रत्यक्षगम्य होना तदुपरान्त यह व्याख्या कि देवदत्त रात्रि में भोजन करता है। यहा दृष्ट शब्द का अर्थ व्यापक है। यहा दृष्ट का अर्थ मात्र दृष्टिगोचर होना न होकर पंच ज्ञानेन्द्रिय एवं एक अन्तः इन्द्रिय द्वारा सम्मिलित अथवा पृथक पृथक रूप से गोचर होना है। इस प्रकार विस्तृत अर्थ में किसी भी इन्द्रिय गोचर विषय की व्याख्या जब अर्थापत्ति प्रमाण से हो तो इस प्रकार के अर्थापत्ति को दृष्टार्थापत्ति की संज्ञा दी जाती है।

किन्तु जब अर्थापत्ति के द्वारा किसी श्रुत विषय की व्याख्या होती है तो उस अर्थापत्ति को श्रुतार्थापत्ति कहते है। जैसे– देवदत्त जीवित है लेकिन घर में नहीं है। इस कथन की व्याख्या के लिए यह कल्पना की जाये कि ' देवदत्त घर के बाहर है ' तो इसे श्रुतार्थापत्ति कहगें। ज्ञातव्य है कि यहा श्रुत शब्द का अर्थ भी तनिक सूक्ष्म है। श्रुत का एक अर्थ तो सुना गया विषय होता है जबकि दुसरा अर्थ शब्द (प्रमाण) गम्य विषय ' भी होता है। अपने गूढ़ार्थ में श्रुतार्थापत्ति का अभिष्ट अर्थ शब्द गम्य विषय या गूढ़ वाक्य की व्याख्या ही है। उल्लेखनीय है कि वेदान्ती श्रुतार्थापत्ति के दो भेद भी बतलाते हैं।[8]

(1) अभिधानानुपपत्ति

(2) अभिहितानुपपत्ति

जब किसी वाक्य का एक भाग अथवा अर्थ सुनकर सम्पूर्ण वाक्य की कल्पना की जाती है तो यह अभिधानानुपपत्ति है जैसे– 'सर्प सुनकर जब कल्पना की जाती है कि 'सर्प निकल आया ' तो यह अभिधानानुपपत्ति है। किन्तु अभिहितानुपपत्ति इससे भिन्न है। कभी कभी किसी वाक्य से निकला अर्थ प्रमाण विरोधी या स्वतोव्याघाती होता है। जब प्रमाण विरोधी या स्वतोव्याघाती वाक्य की व्याख्या के लिए अर्थापत्ति का सहारा लिया जाता है तो इस प्रकार अर्थापत्ति अभिहितानुपपत्ति कही जाती है। जैसे– 'मोक्ष प्राप्त से मरणधर्मा प्राणी अमृत तत्व को प्राप्त करता है' इस वाक्य के अर्थ से एक स्वतोव्याघात उपजता है कि मरणधर्मी अमर हो जाता है। इस व्याघात से बचने के लिए वाक्य का एक अर्थ निकालना पड़ता है कि मरणधर्मिता मिथ्या या धर्म है।

अर्थापत्ति का प्रमाणत्व

भारतीय दर्शन के समस्त सम्प्रदायों में मीमांसको तथा वेदान्तीयों के अतिरिक्त अर्थापत्ति को ज्ञान के स्वतंत्र साधन के रूप में सर्वत्र अस्वीकार किया गया है। अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्वीकार अथवा अस्वीकार करने वालो के अपने पृथक पृथक तर्क है। किन्तु इनमें से अर्थापत्ति के विरूद्ध सर्वाधिक सबल आक्षेप नैय्यायिकों विशेषतः नय्यायिक जयन्त के है, जिन्होनें अर्थापत्ति का अन्तर्भाव अनुमान में करने की चेष्टा की है। वहीं दूसरी तरफ अर्थापत्ति के समर्थक मीमांसक तथा वेदान्तीयों ने भी अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्वीकृत करने के लिए सबल तर्क प्रस्तुत किये हैं। यहा तक कि अर्थापत्ति के कुछ समर्थक तो विशेष परिस्थिति में अनुमान का अन्तर्भाव अर्थापत्ति में करने के पक्ष में दिखते है।[9] अर्थापत्ति के स्वतंत्र प्रमाणत्व को स्पष्ट करने हेतु निम्न सन्दर्भ बिन्दुओं में विवेचना प्रस्तुत है–

(1) अर्थापत्ति और प्रत्यक्ष

कुमारिल भट्ट के मतानुसार अर्थापत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण से भिन्न है। जब हम देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता फिर भी मोटा दिखता है जैसे दृष्ट या श्रुत विषय की व्याख्या इस कल्पना (आपत्ति) के आधार पर करते है कि देवदत्त रात्रि में भोजन करता है, तो यहां इस विषय का ज्ञान कि " देवदत्त रात्रि में भोजन करता है " प्रत्यक्षगम्य न होकर कल्पना गम्य है। अतः अर्थापत्ति प्रत्यक्ष से भिन्न है।

(2) अर्थापत्ति और उपमान

भाट्ट मीमांसक अर्थापत्ति से उपमान प्रमाण का भेद स्पष्ट करते हुए कहते है कि अर्थापत्ति उपमान नहीं है क्योंकि उपमान सादृश्यगम्य ज्ञान होता है जबकि अर्थापत्ति किसी भी तरह से सादृश्यगम्य नहीं है।

(3) अर्थापत्ति और शब्द प्रमाण

शाबारभाष्य में अर्थापत्ति की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि अर्थापत्ति उस अर्थ के ज्ञान को कहते है जिस अर्थ के अभाव में दृष्ट अथवा श्रुत विषय की व्याख्या अथवा उपपत्ति न हो सके।[10]

अर्थापत्ति को इस प्रकार प्रभाषित करने से ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थापत्ति अर्थ का बोध है। चूंकि अर्थ बोध शब्द प्रमाण में भी होता है इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थापत्ति और शब्द प्रमाण में साम्य है। किन्तु यह धारणा भ्रामक है। अर्थापत्ति और शब्द प्रमाण में पर्याप्त भेद है। प्रथम तो यह है कि अर्थापत्ति में अर्थ के बोध के लिए कल्पना का सहारा लिया जाता है जबकि शब्द प्रमाण में अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए कल्पना की आवश्यकता नहीं होती है। द्वितीय प्रमाण रूप में शब्द आप्त पुरूष के वचन होते है जबकि अर्थापत्ति के लिए आप्त अनाप्त का कोई भेद नहीं होता।

(4) अर्थापत्ति और अनुमान

मीमांसको एवं वेदान्तीयों के विपरीत सांख्य और न्याय अर्थापत्ति को एक प्रकार का अनुमान मानते है। सांख्य इसे वैकल्पिक न्याय की कोटि में रखता है जबकि नैय्यायिक इसे व्यतिरेत व्याप्ति पर आधारित अनुमान कहते है। अर्थापत्ति को न्याय दर्शन केवल व्यतिरेक अनुमान के रूप में दिखाने की चेष्टा करता है।[11] जिसका निरूपण इस प्रकार हैः–

प्रतिज्ञा– देवदत्त रात्रि में भोजन करता है

हेतु– वह दिन में भोजन नहीं करता किन्तु मोटा है

व्यतिरेक व्याप्ति– जो रात्रि में भोजन नहीं करता वह दिन में भोजन नहीं करने पर भी मोटा नहीं रहता जैसे नवरात्रि का उपवासी पुरूष

उपनय– देवदत्त नवरात्रि उपवासी की तरह दुर्बल नहीं है

निगमन– देवदत्त रात्रि में भोजन करता है

किन्तु वेदान्ती इस अनुमान को दोषपूर्ण बताते है। वेदान्त के अनुसार व्याप्ति अन्वय (जहाँ जहाँ धुआँ वहाँ वहाँ आग) तथा व्यतिरेक (जहाँ जहाँ आग नहीं वहाँ वहाँ धुआँ नहीं) दोनों के संयोग से प्राप्त होता है। अतएव वेदान्त मतानुसार केवल व्यतिरेकी अनुमान दोषपूर्ण है। स्पष्ट है वेदान्तमतानुसार अर्थापत्ति को अनुमान नहीं माना जा सकता क्योंकि यहा व्याप्ति का आधार अन्वय नहीं है। इसलिए अर्थापत्ति अनुमान नहीं है।

(5) अर्थापत्ति और प्राक्कल्पना

पाश्चात्य तर्कशास्त्र में प्राक्कल्पना का प्रावधान है। वैसे दोनों विधियों में भिन्नता होने के कारण यह आवश्यक नहीं कि अर्थापत्ति और प्राक्कल्पना में साम्य वैषम्य की विवेचना की जाये किन्तु सामान्य तौर पर जहाँ अर्थापत्ति का उपयोग दो तथ्यों के पारस्परिक अनुपपन्नता या विरोध के सामाधान के लिए किया जाता है। वहीं जिन तथ्यों के सामाधान के लिए प्राक्कल्पना की जाती है उनमें अनुपपन्नता या विरोध का होना अनिवार्य नहीं है। इसी प्रकार डॉ0डी0एम0 दत्त ने अर्थापत्ति को पाश्चात्य तर्क शास्त्र में वर्णित प्राक्कल्पना के समकक्ष किन्तु उससे भिन्न बतलाया है।[13] साथ ही प्राक्कल्पना को निश्चित नहीं माना जाता है जबकि अर्थापत्ति को निश्चित प्रमाण की तरह स्वीकार किया जाता है।

निष्कर्षतः उपर्युक्त विवेचनाओं से यह स्पष्ट अवगति होती है कि मीमांसक और वेदान्ती मजबूती व तर्क से अर्थापत्ति को एक स्वतंत्र प्रमाण मानते है। साथ ही इस प्रमाण की उपयोगिता को भी रेखाकिंत करते है। मीमांसक और वेदान्तीयों का कहना है कि अर्थापत्ति में हमें ऐस तथ्य का ज्ञान होता है जिसका ज्ञान किसी अन्य प्रमाण से नहीं हो सकता। मीमांसक इसका उपयोग वैदिक मंत्रो की व्याख्या करने एवं अर्थ समझने के लिए भी करते है। मीमांसक मृत्यु के अन्नतर आत्मा की अमरता में विश्वास भी अर्थापत्ति के आधार पर ही करते है। अद्वेत वेदान्तीयों का माया सिद्धान्त भी बहुत कुछ अर्थापत्ति पर ही आधारित है। यह और बात है कि अन्य दार्शनिक अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण नहीं मानते किन्तु अर्थापत्ति कि प्रक्रिया स्वरूप वह महत्ता को ध्यान मे रखकर विचार किया जाये तो इसे एक वैध स्वतंत्र प्रमाण मानने में कोई तार्किक विसंगति नहीं दिखती।

सन्दर्भ

1. अर्थापत्ति दृष्टः श्रुतो वाऽर्थोन्यथानोपपद्यते इत्यार्थ कल्पना– शाबरभाष्य– 1/1/5।
2. श्लोकवार्तिक– 1/2।
3. भारतीय ज्ञानमीमांसा, नीलिमा सिन्हा, पृष्ठ– 273।
4. तत्रोप्रपाद्यज्ञानेनोपपादक कल्पनमर्थापित्तिः, वेदान्त परिभाषा– पृष्ठ– 246।
5. भारतीय ज्ञानमीमांसा, नीलिमा सिन्हा, पृष्ठ– 273।
6. तर्कभाषा (अर्थापत्ति प्रमाण)।
7. भारतीय न्यायशास्त्र, डॉ0 चक्रधर विजल्वान, पृष्ठ– 408।
8. "श्रुतर्त्यापत्तिश्व द्विविधा– अभिधानानुपपत्ति अभिहितानुपपत्तिश्च "– वेदान्त परिभाषा (अर्थापत्ति)।
9. भारतीय ज्ञानमीमांसा, नीलिमा सिन्हा, पृष्ठ– 276।
10. अर्थापत्तिरपि दृष्टतः श्रुतो वार्थोन्यथानोपपयते इत्यर्थकल्पना, शाबरभाष्य– 1/1/5।
11. तर्कभाषा, पृष्ट 115 ।
12. भारतीय न्याय शास्त्र– डॉ0 चक्रधर विजल्वान पृष्ठ– 412।
13. D.M. Dutt – The Six Ways of knowing P. 247।